मरुमेरु की निदिध्यासना वृत्ति

क्वणप हो या कपर्दिका भरणभेद कहीं नहीं होता । विटपियों का विटपान्तरण–भाव रसाकुल अन्तः देहदिशाओं में विभ्राट हुआ वाहितातिवाहिता हुयी जगच्छिराओं में जीवनीया संजीवनिका भावाधिभाव–सहित सम्प्रेषणीयता निभमानता है। उष्ट्रोष्ठ में वेपथु सांङ्केतिका का द्वार खोलता मातृकुक्षि–दिशा का निर्धारण करता है । हेरम्ब का उच्चार दिगड़्ग का उन्नादवाहीपीठपति हो तो ब्रह्मा अपना कवि नाम सार्थक करता है ।

मरू किसी स्थान का नाम नहीं है। मरू एक स्थिति का सुभावना–सम्भावना पोषित अभिज्ञान है और प्राणिधान भी जिसमें द्वितीयता एवं एकीभाव की परिगणना प्रचलित–प्रचारित नहीं होती ।

मेरू भी पत्थर नहीं है। प्रत्युत प्रस्तरणीकृत वारिधि व्यूह का सैकताङ्कुरित सहस्त्रातिसहस्त्र भवभावतितीर्षुपोषित पारावार है ।

धरणीधर मरू और मेरू भी है। इन्हीं का सङ्घट्ट जगज्जीवन, जन्म–जन्मान्तरण, लय और प्रलय आद्ययन्त का रचना–विनाश विलासपूर है। माध्यन्दिनिक–मीमांसित तत्वाभिनिवेशिणी व्याख्यार्चित तत्वबोधि इसी की आत्मनेपदी है। फिर कैसा काव्यानुसंधान और कैसा काव्य राग। तो भी हम बने रहे हैं युयुत्सु और धारण किए रहे हैं युत्सा, दित्सा, कुत्सा, ईप्सा, वीत्सा, ह्री और एषणा ।

उक्त रसायन से ठहरा है और बहा है काव्य और यही है प्रतिभा –सम्पदा का परिचयी एवं काव्यों और महाकाव्यों का उद्घोषक मिथ पं. शिवकुमार मिश्र–कृत रचना–धर्मौघ काव्य रूप मरुमेरु गद्याधाराकाव्यकम्रकुक्षि वा शिरोधिण्वावर्त्त की काव्यधारा गद्यकम्रकुक्षि नान्तरित हैं और ऐसा यहॉ भी है।

दिनांक : 26.05.2011
एफ–13 किदवई नगर कानपुर – 11
दूरभाष : 0512–2617839

– सेवक वात्स्यायन

प्राक्कथन

भूगोल का विद्यार्थी होने के कारण मरूस्थल की एक भूदृश्य के रूप में शास्त्रीय परिभाषा मुझे याद आ जाती है और मरूस्थल के विविध स्वरूपों, अभिलक्षणों, निर्माण प्रक्रियाओं और जलवायुगत विशेषताओं का भी एक स्पष्ट चित्र मानस पर अंकित हो जाता है। विद्यार्थी जीवन में मैंने मरूस्थल का भूआकृतिक, भूगर्भशास्त्रीय, जलवायु वैज्ञानिक तथा आर्थिक भूगोल के दृष्टिकोण से भी अध्ययन किया था। इस पर काव्य भी लिखा जा सकता है यह कभी नहीं सोचा था। काव्य का सही रसास्वादन पाठक को तभी हो सकता है जब वह वर्ण्य विषय से न केवल परिचित हो अपितु उसकी विशेषताओं को भी भली प्रकार समझता हो। अतः मरूस्थल का भौगोलिक दृष्टि से संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

अंग्रेजी के डेज़र्ट शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के डेसर्टन शब्द से हुई है जिसका अर्थ था परित्यक्त क्षेत्र (An Abondoned Place) बीसवीं सदी से पूर्व अंग्रेजी में इसका प्रयोग निर्जन प्रदेशों के लिए किया जाता था। किन्तु भूगोल शास्त्र के क्रमशः विकास से यह शब्द उन क्षेत्रों के लिए प्रयुक्त होने लगा जो शुष्क थे और अब तो जलवायु विज्ञान के अनुसार मरूस्थल की परिभाषा ही यह है कि भूतल के वे क्षेत्र जहॉ वर्षण की तुलना में वाष्पीकरण अधिक होता है मरूस्थल कहलाते हैं।

मरूस्थल की जो छवि सामान्य जनमानस में है उसके विपरीत मरूस्थल शीत, उष्ण और शीतोष्ण तीनों प्रकार के हो सकते हैं। तिब्बत का पठार यदि शीत मरूस्थल है तो सहारा, अरब और थार के मरूस्थल उष्ण मरूस्थल हैं। जबकि कालाहारी, गोबी तथा तकला मकान शीतोष्ण मरूस्थल हैं। मरूस्थल यह आवश्यक नहीं कि केवल रेतीला या धूल भरा विस्तार

हो या वे समतल हों। नंगी विषम पहाड़ियों, बजरी तथा केवल चट्टानों से निर्मित भूदृश्य भी मरूस्थलों में पाए जाते हैं।

प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता मौंकहाउस महोदय के अनुसार मरूस्थलों में छः प्रकार के भूदृश्य हो सकते हैं। प्रथम रेतीला मरूस्थल जिसे सहारा में अर्ग कहा जाता है। रेतीले विस्तार दो प्रकार के होते हैं, एक तो रेत के टीलों के रूप में और दूसरा रेत के विस्तृत मैदानों के रूप में। सहारा मरूस्थल के आठ प्रतिशत क्षेत्र में रेत के टीले और सत्रह प्रतिशत में रेतीले मैदान मिलते हैं। मरूस्थलीय भूदृश्य का दूसरा प्रकार है चट्टानी मरूस्थल जिसे सहारा में हमादा कहते हैं। इसमें ऊपर की मिट्टी, रेत तेज हवाओं द्वारा उड़ाए जाने से खुली चट्टानें दिखती हैं। तीसरा प्रकार है वह सतह जिसमें महीन कण उड़ जाने के बाद केवल मोटी बजरी और घिसे हुए छोटे–छोटे पत्थर मिलते हैं जिसे पेवमेंट कहते हैं इसे सहारा में रैग कहा जाता है। इसका चौथा प्रकार है पर्वतीय तथा बेसिन भूदृश्य जिनमें आन्तरिक और केन्द्रीय अपवाह प्रणाली होती है जब कभी कुछ वर्षा हो जाती है तो मौसमी नदी और नाले पर्वतों से उतरकर मिट्टी बजरी और चट्टानों का भार लादे हुए नीचे बेसिन में आकर समाप्त हो जाते हैं जहॉ अस्थायी नमकीन झील भी हो सकती है जिसे प्लेया कहते हैं। इस अस्थायी झील के पानी के वाष्पीकृत हो जाने पर विस्तृत समतल नमकीन सतह बचती है। उत्तरी अमेरिका तथा मध्य एशिया में इस प्रकार के भूरूप मिलते हैं। पांचवां प्रकार है बैडलैंड्स जो समतल पठारी प्रदेश के तीव्र कटाव के कारण बनते हैं। यह कटाव उन नदियों द्वारा होता है जो मरूस्थल से बाहर उत्पन्न होकर पर्याप्त जलराशि लेकर अर्धशुष्क मरूस्थलीय क्षेत्रों से बहती हैं। अफ्रीका में नील तथा अमेरिका में कोलोरेडो ऐसी नदियों के उदाहरण हैं। छठा भूरूप है अर्न्तपर्वतीय बेसिन जहॉं आसपास के उच्च पर्वतों के कारण वृष्टिछाया प्रदेश उत्पन्न हो जाता है जैसे लद्दाख तथा तिब्बत।

मरूस्थल की जलवायु वैज्ञानिक परिभाषा के अनुसार ये वे क्षेत्र हैं जहॉ औसत वार्षिक वर्षा 250 मि.मी. से कम होती है। 1961 में पेवेरिल मीग्स महोदय ने तीन श्रेणियॉं वर्षा के आधार पर परिभाषित की हैं प्रथम है शुष्कतम मरूस्थल जहॉं लगातार कम से कम 12 महीनों तक बिलकुल वर्षा न हो। द्वितीय श्रेणी में शुष्क क्षेत्र हैं जहॉ वार्षिक वर्षा 250 मि.मी. से कम हो और तीसरी श्रेणी है अर्धशुष्क क्षेत्रों की जहॉं औसत वार्षिक वर्षा 250 मि.मी. से 500 मि.मी. के बीच होती है। संसार में अटाकामा जो दक्षिण अमेरिका के चिली देश में है शुष्कतम मरूस्थल है। आकार के अनुसार सहारा(अफ्रीका) सबसे बड़ा मरूस्थल है जो 91 लाख वर्ग किलोमीटर तक फैला है दूसरा स्थान अरब रेगिस्तान का है जो 23 लाख 30 हजार वर्गकिलोमीटर पर फैला है तीसरा स्थान गोबी मरूस्थल का है जो मध्य एशिया में 13 लाख वर्गकिलोमीटर में फैला है। दक्षिण अफ्रीका का कालाहारी मरूस्थल 9 लाख वर्गकिलोमीटर के आकार का है और चौथे स्थान पर है तथा आस्ट्रेलिया का 6 लाख 47 हजार वर्गकिलोमीटर में विस्तृत ग्रेट विक्टोरिया मरूस्थल पॉंचवें स्थान पर है।

भिन्न–भिन्न महाद्वीपों में फैले होने के कारण इनमें वानस्पतिक और जैविक विविधता है जैसे विभिन्न प्रकार के कैक्टस यदि अमेरिका के मरूस्थलों के मूल निवासी हैं तो यूफोर्बिया के विविध प्रकार अफ्रीका के मरूस्थलों के मूल निवासी हैं। लेकिन शुष्कता सहने के लिए विभिन्न प्रकार के गुणों से युक्त होने के कारण ये सभी पौधे जीरोफाईट कहलाते हैं। मरूस्थलों ने पूरी पृथ्वी के धरातलीय भाग का लगभग तैंतीस प्रतिशत घेर रखा है। यूरोप को छोड़कर ये प्रत्येक महाद्वीप में हैं और आस्ट्रेलिया में तो ये दो तिहाई भाग पर फैले हुए हैं। उत्तरी अफ्रीका में सबसे बड़ा सतत् रेगिस्तानी विस्तार है जो पश्चिम में सेनेगल से प्रारंभ होकर पूर्व में सऊदी अरब तथा ईराक, ईरान होता हुआ बलूचिस्तान तथा भारत में थार तक विस्तृत है।

किन्तु एक चीज में सर्वत्र समानता है। वह है वाष्पीकरण की अधिकता और वर्षण का तुलनात्मक अभाव। अतः नीरसता प्रधान गुण धर्म है जिसके कारण वनस्पति जगत की विरलता और उनका कंटकित विशेष आकार यहाँ के मुख्य लक्षण हैं। फलतः जैवविविधता की अल्पता और जनसंख्या की कमी भी रहती है।

किन्तु मैं आपको भूगोल विषयक गूढ़ताओं में नहीं ले जा रहा हूँ। शुष्क ठंडी या उष्ण तीव्र वेग वाली हवाएं, धूल भरी आंधियाँ दिन और रात के तापमान में भारी अंतर (लीबिया के मरूस्थल में दिन में यदि तापमान 50 डिग्री सेल्सियस तक पहुँच जाता है तो रात में कभी–कभी शून्य डिग्री पर पहुँच जाता है) रात की शीतलता और रात्रिकालीन तारकित आकाश की उज्ज्वलता इन क्षेत्रों की विशेषताएं हैं जिनका उपयोग मैनें काव्य के लिए कर लिया है।

निरंतर चतुर्दिक फैलाव मरूस्थल की आक्रामकता की अभिव्यक्ति है। वैज्ञानिक तथा राजनीतिज्ञ दोनों ही चिंतित हैं यह देखकर कि मरूस्थल लगातार प्रसार पा रहे हैं। अफ्रीका में सहारा दक्षिण की ओर उन क्षेत्रों में बढ़ रहा है जिन्हें साहेल कहा जाता है यहाँ स्थित देशों जो मुख्यतः कृषि प्रधान हैं की अर्थव्यवस्था चौपट हो रही है फसलें नष्ट हो रही हैं शुष्कता बढ रही है और रेत का आक्रमण होता चला जा रहा है । उत्तर की ओर भी सहारा बढा है, इसके ऐतिहासिक प्रमाण हैं भूमध्य सागर के किनारे के क्षेत्र कभी रोमन साम्राज्य के अन्न भंडार कहे जाते थे । अर्थात् आज से 1500 वर्ष पूर्व यहाँ गेहूँ तथा अन्य खाद्यान्नों की विस्तृत खेती होती थी । आज लीबिया मिश्र, अल्जीरिया, ट्यूनीशिया आदि देशों के ये उत्तरी भाग शुष्क मरूस्थल हैं। मध्य एशिया में समरकन्द, बुखारा आदि नगर मध्य काल तक समृद्ध नगर थे जो सिल्क रूट पर स्थित थे किन्तु आज यहाँ शुष्कता की वृद्धि से इन नगरों का विकास रूक गया है वे उपेक्षित हो गए हैं।

यहां मरूस्थल एक ऐसी विचारधारा का प्रतीक है जो नितांत नीरस है। जिसमें जीवन के कोमल पहलू अर्थात् कला पक्ष का कोई स्थान नहीं है। जहां विविधता के प्रति कोई सहिष्णुता नहीं है। विविधता की न केवल उपेक्षा की जाती है बल्कि बलपूर्वक उसके उच्छेदन का उद्यम भी किया जाता है।

ऐसी विचारधारा से आज विश्व पीड़ित है। और इसी आसन्नविपत्ति की ओर इंगित करने के लिए मरु और मेरु नामक यह काव्य सुधी पाठकों के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है। यह किसी व्यक्ति समूह देश या धर्म की बात नहीं है। यह बात केवल उस नीरस विचारधारा की है जो एकरूपतावादी हिंसात्मक, आक्रामक और पश्चगामी है। जो मूलतः अधिनायकवादी है जिसमे मतभेद असह्य है।

यहॉ मरूस्थल ऐसे जीवन दर्शन का भी प्रतीक है जो केवल शोषण जानता है। जहॉ भी वसु (अर्थात धन या जल) का उत्पादन से अधिक शोषण होगा मरूस्थल ही विस्तार पायेगा। इस शोषण ने करोड़ों जीवन नीरस बना दिये हैं जो मरूस्थल का सूक्ष्म स्तर पर विस्तार है।

संस्कृत भाषा देववाणी इसीलिए कहलाती है कि इसमें शब्द में ही उसका व्युत्पत्तिजन्य अर्थ छिपा रहता है। अतः प्रत्येक शब्द सार्थक और वैज्ञानिक है। संस्कृत में मरूस्थल के लिये जो मरू शब्द प्रचलित था उसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है–

म्रियते अस्मिन् इति मरूः मृ धातु से उ प्रत्यय लगकर मरू शब्द बनता है अर्थात् जिसमें प्राणी मर जाता है वह मरू है। इसी कारण

मरूस्थल निर्जन उजाड़ वीरान और प्रायः निर्जीव होता है।

हमारे समस्त जीवन दर्शन का मुख्य बिन्दु सहिष्णुता और अहिंसा है। वैचारिक स्वतंत्रता है किन्तु हमने अहिंसा और सहिष्णुता के उपयोग में प्रायः भयानक भूलें की हैं। इसका मुख्य कारण मुझे यह प्रतीत होता है कि हमने प्राचीन मान्य ग्रंथों स्मृतियों, धर्मशास्त्रों तथा चाणक्य के अर्थशास्त्र का समग्रता से अध्ययन नहीं किया और राजनीति के आचार्यो जैसे शुक्राचार्य, बृहस्पति, विदुर, उद्धव, भीष्म, मनु, याज्ञवल्क्य तथा चाणक्य जैसे राजनीति और नीति के महान् आचार्यो के मत का सम्यक् न तो अवधारण किया और न पालन और वही हमारी शत्रुकृत दुर्दशा के रूप में परिणमित हुआ।

महाभारत के अनुशासन पर्व में युधिष्ठिर को राजधर्म की शिक्षा देते हुए भीष्म ने कहा था कि–

विनयेच्चापि दुर्वृत्तान् प्रहारैरपि पार्थिवः

21/85 अनुशासन पर्व

अर्थात् दुष्ट लोगों को, आवश्यकता पड़ने पर प्रहार करके भी अनुशासित किया जाना चाहिए। आगे भीष्म जी कहते हैं कि राजनीति के प्रथम तीन उपाय अर्थात् साम, दान और भेद के असफल हो जाने पर राजा को चाहिए कि वह शत्रु की निर्बलताओं का ज्ञान प्राप्त कर बिना बिलंब और अधिक सोच विचार किए दंड का प्रयोग करे।

त्रयाणां विफलं कर्म यदा पश्येत् भूमिपः
रन्ध्रं ज्ञात्वा ततो दण्डं प्रयुंजीताविचारयन्

4/94 अनुशासन पर्व

भीष्म आगे कहते हैं कि राजा को दोनों प्रकार के मार्गो सीधे तथा कुटिल का ज्ञान होना चाहिए। वक्र का प्रयोग जानबूझकर नहीं करना चाहिए, किन्तु अनिष्ट के प्रतिकार के लिए उसका उपयोग होना चाहिए–

उभे प्रज्ञे वेदितव्ये ऋज्वी वक्रा च भारत
जानन् वक्रां न सेवेत प्रतिबाधेत चागताम्।

5/100 अनुशासन पर्व

भीष्म जी कहते हैं कि हे राजन् ! बृहस्पति ने इन्द्र को राजनीति का उपदेश देते हुए कहा था कि अकुशल राजा को मृदुता, दण्ड में आलस्य, असावधानी और शत्रु के द्वारा भली प्रकार की गई माया पीड़ित करते हैं।

मार्दवं दण्ड आलस्यं प्रमादश्च सुरोत्तम।
मायाः सुविहिताः शक्र सादयन्त्यविचक्षणम्।।

24/101 अनुशासन पर्व

मनुस्मृति में भी कहा गया है कि यह संसार दण्ड से ही वश में लाने योग्य है, क्योंकि दण्ड भय से ही लोग अपराध में प्रवृत्त नहीं होते, स्वभाव से ही पवित्र मनुष्य मिलना दुर्लभ है।

सर्वो दण्ड जितो लोको, दुर्लभो हि शुचिर्नरः ।
दण्डस्य हि भयात् सर्व जगद्भोगायकल्पते ।।

7/22 मनुस्मृति

मनु जी के अनुसार वही राजा सफल हो सकता है जो नित्य दंड देने को तत्पर रहे, अपनी शक्ति का प्रदर्शन करता रहे। गुप्त रखने योग्य बातों को सदा गुप्त रखे और जो सर्वदा शत्रु की दुर्बलताएं जानने का प्रयास

करता रहे।

नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरूषः।
नित्यं संवृतसंवार्यो नित्यं छिद्रानुसार्यरेः।।

7/100 मनुस्मृति

याज्ञवल्क्य जी भी कहते हैं जो राजा दण्डनीय व्यक्तियों को दंण्ड देता है और वध योग्य व्यक्तियों को मरवाता है, वह महान् यज्ञों से प्राप्त होने वाले शुभ फल को प्राप्त कर लेता है।

यो दण्ड्यान्दण्डयेद्राजा, सम्यग्वध्यांश्च घातयेत् ।
इष्टं स्यात्क्रतुभिस्तेन, समाप्तवरदक्षिणै।।

आचाराध्याय 359 याज्ञवल्क्य स्मृति

शुक्राचार्य ने भी यह मत व्यक्त किया है कि आर्यो के साथ युद्ध में तो युद्ध धर्म का पालन करना चाहिए। किन्तु यदि असुरों या आर्येतर जातियों से युद्ध हो जो छल और माया का आश्रय लेते हैं तो हमें भी कूटयुद्ध का ही प्रयोग करना चाहिए। जैसा कि राम ने बालि को मारते समय,कृष्ण ने कालयवन को मारते समय, और इन्द्र ने नमुचि को मारते समय किया था।

रामकृष्णेन्द्रादि देवैः कूटमेवादृतं पुरा ।
कूटेन निहतो बालिर्यवनो नमुचिस्तथा।।

363 चतुर्थ अध्याय सप्तम प्रकरण शुक्रनीति

राजनीति के सर्वमान्य आचार्य चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में कहा है कि यदि बाहरी शक्तियॉ देश में विप्लव उत्पन्न करती है तो राजा को चाहिए कि वह भेद और दण्ड नीति का प्रयोग करें।

बाह्येषु प्रतिजपत्सु भेद दण्डौ प्रयुञ्जीत।

प्रकरण 143 अध्याय 5 अर्थशास्त्र

राजा का अत्यधिक मृदु स्वभाव वांछनीय नहीं है, क्योंकि ऐसा करने पर उसके आश्रित लोग तक उसकी अवज्ञा करने लगते हैं।

आश्रितैरप्यवमन्यते मृदुस्वभावः। अर्थशास्त्र

आगे चाण्क्य कहते हैं कि यदि अपना हाथ भी विष से प्रभावित हो जाए तो उसको काटकर अलग कर देना चाहिए।

स्वहस्तोपि विषदिग्धश्छेद्यः।

वे यह भी कहते हैं कि ऋण, शत्रु और रोग इनका समूल नाश ही व्यक्ति का कर्तव्य है।

ऋणशत्रुव्याधिष्वशेषः कर्तव्यः ।

चाणक्य नीति में स्पष्ट कहा गया है कि उपकार का बदला उपकार से और हिंसा का बदला हिंसा से देना चाहिए। दुष्ट के साथ यदि दुष्टता का व्यवहार किया जा तो इसमें कोई दोष नही होता है।

कृते प्रतिकृतं कुर्याद् हिंसने प्रतिहिंसनम्।
तत्र दोषो न पतति दुष्टे दुष्टं समाचरेत्

।। 2/17 चाणक्य नीति

महाकवि भारवि के ग्रंथ किरातार्जुनीयम् में द्रौपदी युधिष्ठिर से कहती है कि जो मूढ़ मायावियों के साथ माया का ही व्यवहार नही करता

वह पराजय को ही प्राप्त करता है।

ब्रजन्ति ते मूढ़ धियः परा भवं,
भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः ।

1/30 किरातार्जुनीयम्

महाकवि माघ के सुप्रसिद्ध ग्रंथ शिशुपालवधम् के द्वितीय सर्ग में बलराम, श्रीकृष्ण और उद्धव जी के मध्य जो राजनीति की चर्चा वर्णित है, उसमें राजनीति के एक से बढ़कर श्रेष्ठ सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है। वहॉ बलराम जी कहते हैं कि शत्रु को समूल नष्ट किए बिना प्रतिष्ठा दुर्लभ है। जब तक धूल को जल, कीचड़ नही बना देता तब तक जल की स्थिति नही रह सकती।

विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा।
अनीत्वा पंकतां धूलिमुदकं नावतिष्ठते।

2/34 शिशुपालवधम्

वे आगे कहते हैं कि मृदु स्वभाव का राजा दुष्ट लोगों का भरण–पोषण करता हुआ और उनका सर्वविधि कल्याण करता हुआ भी लांछित किया जाता है, किन्तु प्रतापी राजा सिंह की भांति दुष्टों को पराजित कर उनका अधीश्वर कहलाता है।

अंकाधिरोपित मृगश्चन्द्रमा मृगलांछनः।
केसरी निष्ठुरक्षिप्त मृगयूथो मृगाधिपः ।।

2/53 शिशुपालवधम्

बलराम जी अपने विचारों को स्पष्टता और दृढ़ता से कहते है कि जो शत्रु साम, दान, भेद और दंड इन चार उपायों में से केवल चतुर्थ अर्थात् दंड द्वारा ही वश में आने योग्य हो तो उसे दंड ही देना चाहिए। कौन समझदार व्यक्ति, जब रोगी को ज्वर से पसीना आ रहा हो तब उसे शीतल जल से सींचता है।

चतुर्थोपाय साध्येतु रिपौ सान्त्वमपक्रिया।
स्वेद्यमानज्वरं प्राज्ञः कोऽम्भसा परिषिंचति।।

2/54 शिशुपालवधम्

यहॉ विस्तार भय से केवल कुछ ही ग्रंथों और विद्वानों के विचार दिए गए हैं। किन्तु यह स्पष्ट है कि हमारे चिंन्तक सदा ही यह कहते रहे है कि राजा का प्रथम कर्तव्य अपनी प्रजा की रक्षा है और यदि वह इस कर्तव्य में विफल रहता तो वह मृत के समान है। शत्रु विशेषतः मायावी शत्रु के प्रतिकार के क्या उपाय किए जाने चाहिए यह स्पष्ट रूप से वर्णित किया गया है। किन्तु हमारे देश का इतिहास साक्षी है कि जब जब हमने मृदुता धारण की अनावश्यक दया दिखाई, धर्म युद्ध के नियमों का पालन किया, शत्रु की उपेक्षा की तब–तब हमारी प्रजा पर विपत्ति आई। हमें इतिहास से कुछ तो सीखना चाहिए।

किन्तु दुर्भाग्य यह है कि आज भी सुशिक्षित वर्ग को भी हमारे प्राचीन ग्रंथ रत्नों का ज्ञान नही है। बृहस्पति, शुक्र, भीष्म, उद्धव, चाणक्य जैसे आचार्यो द्वारा प्रतिपादित राजनीति के सिद्धातों का सम्यक ज्ञान नहीं है। और तो और महत्वपूर्ण पदों पर बैठे नीति निर्माताओं में से अनेक इन प्राचीन मतों से अपरिचित हैं। कुछ ने अर्थशास्त्र या कामन्दकीय का नाम ही सुना है, अध्ययन नहीं किया है।

शास्त्रों में स्थान–स्थान पर उल्लेख है कि अत्याचार को सहना भी बहुत बड़ा पाप है क्योंकि इससे अपराधी को प्रोत्साहन ही मिलता है और वह निरीह जन को अधिकाधिक पीड़ा देता है।

इस ग्रंथ के माध्यम से यह भी कहने का प्रयास किया गया है कि केवल सैन्य बल पर आधारित संस्कृतियॉ शीघ्र ही लुप्त हो जाती हैं।

यह ग्रंथ उन सहृदय पाठकों के लिए हैं जो मेरी तरह वर्तमान घटना चक्रों से चिंतित हैं और जिन्हें राष्ट्र हित की सच्ची चिंता है। यद्यपि हिंदी विश्व में बोलने वाले लोगों की संख्या की दृष्टि से अंग्रेजी व चीनी भाषा के बाद तीसरी सबसे बड़ी भाषा है और यह तथ्य एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका द्वारा प्रकाशित है किन्तु आज भी हिंदी को स्वयं भारत में वह स्थान प्राप्त नहीं है जिसकी यह अधिकारिणी है। जनगणना 2001 के अनुसार हिन्दी 44 करोड़ से अधिक लोगों की मातृभाषा थी जो भारत की कुल जनसंख्या का 43.5% है। किंतु हिंदी भाषी राज्यों में साक्षरता भी कम है जहाँ सम्पूर्ण भारत में साक्षरता का प्रतिशत 65.38 है, हिंदी भाषी प्रदेशों में सामूहिक रूप से यह 61% ही है । अर्थात् 40% लोग निरक्षर है। साहित्यिक रूचि कम होती जा रही है। अशिक्षित पढ़ने में अक्षम हैं, अर्ध शिक्षित जीवन संघर्ष में व्यस्त हैं और उच्च शिक्षित पश्चिम परस्त हैं। अंग्रेजी में शिक्षित ये लोग हिन्दी साहित्य से दूर हैं। हमारे कई महापुरूषों ने तो गीता तक अंग्रेजी अनुवाद से पढ़ी हैं। इस कारण मरु और मेरु बहुत अधिक लोगों द्वारा पढ़ा जाएगा इसकी संभावना नहीं है। फिर भी यदि केवल कुछ सौ प्रबुद्ध व्यक्तियों द्वारा भी इसे पढ़ा गया तो मैं अपना प्रयास सार्थक मानूंगा।

सृजन प्रक्रिया में कवि केवल माध्यम होता है। यह बात पुनः इस रचना के लेखन से प्रमाणित हो जाती है पिछले 5 वर्ष से चाणक्य के ऊपर उपन्यास लिखने का प्रयास चल रहा है। इसी बीच 23 अप्रैल 2009 के दिन चिंतन प्रक्रिया प्रारंभ हुई और 23 अप्रैल से 06 मई 2009 की अल्पावधि में 250 से अधिक पद्य लिखे गए और अगले 35 दिनों में इसमें कुछ परिवर्धन और हुआ और 10 जून 2009 को 415 पद्य युक्त मरु और मेरु नाम से अभिधेय यह खंड काव्य पूर्ण हो गया। इसके लेखन की कोई पूर्व योजना नहीं थी। हां, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय घटना क्रम की वे घटनाएं जो राष्ट्र के लिए अहितकर सिद्ध हो रही हैं बार–बार मन को कचोटती रहती हैं।

1989 में भगवान शंकर एवं देवी सरस्वती की कृपा से मेरी साहित्यिक यात्रा प्रारंभ हुई तब मैनें कल्पना भी नहीं की थी कि राधेय महाकाव्य सृजित हो जाएगा और 1995 में प्रकाशित भी हो जाएगा। यह एक इतनी लंबी और कठोर यात्रा थी कि मैनें सोचा था कि आगे कुछ नहीं लिखूँगा। किन्तु 1996 में ही अश्वत्थामा का लेखन दिल्ली में प्रारंभ हो गया और 2003 में कानपुर में इसका प्रकाशन हो गया। तुलसीदास ने लिखा है –"जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई।" वही स्थिति मेरी हुई और मैं संकल्प करने लगा कि ईश्वर ने चाहा तो जीवन काल में 5 रचनाएं लिखूंगा दो महाकाव्य दो खण्डकाव्य तथा एक उपन्यास।

चाणक्य उपन्यास का लेखन जो अभी भी चल रहा है इसी संकल्प का फल है। इसी बीच दृश्यभूमि पर अचानक मरूस्थल प्रकट हुआ। बेचारे मरूस्थल ने चाणक्य को कहीं बाधा नहीं पहुँचाई है।

आकस्मिकता में जो छंद प्रकट हुआ, उसी में काव्यधारा बह निकली। पिंगल शास्त्र के ज्ञाता संभवतः सरसी छंद को मरूस्थल जैसी भाव भूमि के लिए उपयुक्त नहीं ठहराएंगे। मैं भी जानता हूँ कि यह छंद मुख्यतः छायावादी कवियों का कोमल और मसृण भावनाओं की अभिव्यक्ति

के लिए प्रिय छंद था। मरूस्थल जैसे रूक्ष विषय के लिए इनका प्रयोग करके मैनें सरसी के प्रति अन्याय ही किया है। यह छंद शुद्ध सरसी नहीं है क्योंकि इसमें चार पदों के स्थान पर दो ही पद लिए गए हैं इसे अर्द्ध सरसी भी कहा जा सकता है। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से कुछ विद्वान कह सकते हैं कि यह कृति खंड काव्य भी नही है क्योंकि इसमें छःसर्ग तो हैं किन्तु प्रत्येक सर्ग में नियमानुसार छंद परिवर्तन नही किया गया है। सर्गान्त में छंद परिवर्तन भी नही है।

मुझे स्वयं विस्मय है कि राधेय तथा अश्वत्थामा में 45 प्रकार से अधिक छंदों का प्रयोग करने के बाद भी मैंने केवल सरसी को ही क्यों पकड़ लिया। तो मेरा नम्र निवेदन है कि इस चुनाव का अवसर ही नहीं था। वाग्धारा स्वतः जिस लय और गति में प्रस्फुटित हुई वह सरसी छंद ही था। भाषा की तत्समता मेरे लिए नैसर्गिक स्थिति है क्योंकि मैं संस्कृत का भी विद्यार्थी रहा हूँ।

इस प्रकार माँ भारती के चरणों में यह मेरा तीसरा काव्य प्रसून समर्पित है। मरूस्थल के चित्रण में या इसमें निहित संदेश को देने में मैं कितना कृतकार्य हुआ हूँ इसका निर्णय सुधी पाठक ही करेंगे। विद्वानों को इसे पढ़कर यदि हर्ष की अनुभूति होती है तो मैं उसे सौभाग्य मानूँगा और उनका आशीर्वाद ही मेरे लिए साहित्य साधना का प्रसाद होगा।

अपने जन्म व लालन–पालन के लिए मैं ऋणी हूँ। अम्माजी (दादी) श्रीमती कलावती देवी का पिताजी श्री भगवान दयाल मिश्र तथा माताजी श्रीमती राम सहेली देवी का। आज जो कुछ भी हूँ इन्ही के कारण हूँ। ऋणी हूँ अपने गुरूजन का जिन्होंने मुझे प्राथमिक कक्षा से स्नातकोत्तर तक शिक्षा का दान दिया। आदरणीय श्री शंकर प्रसाद तिवारी जो भूगोलवेत्ता थे मुझे पुत्रवत्त स्नेह देते रहे और उत्साहवर्धन करते रहे। संस्कृत में प्रवीणता का श्रेय आचार्य श्रीरामकृष्ण सराफ तथा श्री रतनचंद जैन को जाता है। आचार्यवर श्री सराफ तो प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति को जब तक समझा नहीं देते थे आगे नहीं बढते थे। मेरे काव्यों को उन्होंने ध्यान से पढ़ा और अपने शिष्य के कृतित्व पर गद्‌गद् हुए।

काव्य के क्षेत्र में उत्साहवर्धन के लिए श्री धर्मपाल अवस्थी जो सिद्ध हस्त कवि हैं तथा आचार्य श्री सेवक वात्स्यायन का ऋणी रहूँगा जो लेखन की प्रगति के विषय में पूछते रहे और मार्गदर्शन भी देते रहे।

लेखन में मेरा उत्साहवर्धन विशेषतः चाणक्य उपन्यास के लेखन में कर्नल गोविंद बल्लभ थपलियाल तथा प्रोफेसर ओ.पी. शुक्ल के कारण भी होता रहा है जिन्होंने अनेक संदर्भ ग्रंथ उपलब्ध कराए।

अपनी पत्नी रत्नेश का ऋणी हूँ जिन्होंने गृहस्थी की क्रियाओं से मुझे मुक्त रखा और पुस्तकों में डूबे रहने वाले मेरे जैसे स्वभाव के व्यक्ति को सहन किया।

इस ग्रंथ के टंकण में राजभाषा अनुभाग के श्री जीवन राम यादव, श्री कैलास चन्द्र उपाध्याय व श्री दिलीप कुमार राय तथा सतर्कता अनुभाग के श्री राम शंकर मालवीय ने जो योगदान दिया इसके लिए कृतज्ञ हूँ।

शिव कुमार मिश्र

10 जून 2009
इटारसी